शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol. 2, Issue 1 & 2, (Joint Issue)
15 Jan-15 July, 2011

प्राचीन भारत में गन्ध-व्यवसाय

प्रभात कमल सिंह
शोध छात्र, उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

www.shodh.net

प्राचीन भारत में गन्ध-व्यवसाय

प्रभात कमल सिंह

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता प्रकृति प्रदत्त प्रसूनों से सदा सुवासित रही है। प्रकृति की अनुकृति को संस्कृति रूप में रूपायित करने का सतत् प्रयास भारतीय जनों ने किया है। नितान्त एकाकी अरण्य को, अपने सुगन्ध से सुवासित करने वाले पुष्पों को ढ़ेरियों के रूप में उत्पन्न करने की दृष्टि से पुष्पों की खेती की जाने लगी। वन प्रान्तर में अनायास उगे हुए फूलों की उपयोगिता की दृष्टि से मानव ने सोचा और प्रकृति प्रदत्त सुगन्ध को सदा समाज जीवन को मिलता रहे, इसके लिए जो भी प्रयास किया गया, वह एक व्यापारिक एवं व्यावसायिक प्रयास था।

विवेच्यकाल में पुष्प[1] के विविध प्रकारों का उल्लेख पाणिनि ने किया है, जिनमें प्रमुख कुमुद,[2] पुष्कर[3] तथा पद्म, उत्पल, विष आदि पर्यायों का भी उल्लेख किया है।[4] अष्टाध्यायी के ''हरीतक्यादिगण'' में शेफालिका (पारिजात या हरसिंगार) का विशेष विवरण दिया है क्योंकि शेफालिका का वर्ण और सुवास दोनों लोकप्रिय थे। पाणिनि के अनुसार पुष्पों के नाम उनके पुष्पित होने के ऋतु से रखे जाते थे।[5] प्रकृति के गोद में खिलने वाले इन पुष्पों को चुनकर सुगन्धित द्रव्यों का निर्माण किया जाता था। अष्टाधयायी में किसर[6] और शलालु[7] नामक सुगन्धित द्रव्यों की दुकानों का उल्लेख है। इनकी ठीक पहचान नहीं हुई है क्योंकि शलालु बेचने वाली स्त्री शालालुकी, शलालुकी कही जाती थी। सिरादिगण में नलद, तगर, गुग्गुल, उशीर का भी उल्लेख है। सुभगंकरण से संबधित अनेकशः सुगन्धित द्रव्य बनाये जाते थे, जिनका प्रयोग नारियाँ करती थी।[8] महिष्यादिगण[9] में अनुलेपिका, प्रलेपिका, विलेपिका आदि परिचारक सुगन्धित प्रसाधनों के लेपन से सम्बन्धित थे। अष्टाध्यायीगण पाठ में अनेक प्रकार के भृत्यों में उत्सादक (शारीरिक मण्डन में सहायक), उद्वर्तक (गन्धाचूर्ण अथवा गन्ध उबटन लगाने वाला), प्रलेपिका, विलेपिका (अगुरू, कुमकुम, चन्दसादि लगाने वाली परिचारिका), अनुलेपिका आदि भृत्य प्रायः राज्यभवन और धनिक नागरिकों के यहाँ रहते थे।[10] पाणिनि के इन विवरणों से यह संकेतित होता है कि प्राचीन काल में गन्ध-व्यवसाय एक वर्ग विशेष द्वारा किया जाता था। सुगन्धित पुष्पों के रस को निचोड़कर लेप रूप में तैयार करना और दीर्घकाल तक उसकी सुगन्ध की विद्यमानता बने रहना, एक जटिल रासायनिक प्रक्रिया की ओर संकेत करता है। पाणिनि के कथन की पुष्टि महाभारत[11] से होती है कि तत्कालीन नारियां ही नहीं, अपितु आंध्र सैनिक भी अपने शरीर पर सुगन्धित चूर्ण का प्रयोग करते थे। मलय पर्वत का यह चन्दन चोल और पाण्ड्यों द्वारा उपार्जित किया जाता था।[12] चन्दन, अगरू तथा अन्य सुगंधित पदार्थ बंगाल के खाड़ी में सन्निवसित जनों द्वारा उत्पादित किया जाता था, जिसे ''मलेच्छ'' कहा गया है[13] तथा श्वेत चन्दन किरातों द्वारा उत्पन्न किया जाता था।[14] चन्दन को रगड़कर तिल के तेल में मिलाकर ''इत्र'' बनाया जाता था।[15] इससे यह ज्ञात होता है कि सुगंधित पदार्थो का निर्माण एक उच्चतम विशेषीकृत उद्योग था।

उत्तम प्रकार का अगरू भारी, स्निग्ध, सुगन्धित, दूर तक सुगन्ध फेकने वाला, अग्नि को सहन करने वाला, आनन्ददायक, धूप में सम्पन्न, जलते समय एक जैसी गन्ध देने वाला और वस्त्र आदि पर पोछ देने पर भी गंध बनी रहे, ये अगरू के गुण हैं।[16]

तैलपर्णिक चन्दन-

कौटिल्य ने विभिन्न प्रकार के तैलपर्णिक चन्दन और उसके प्रकार, गुण तथा उत्पत्ति स्थान का भी उल्लेख किया है-

अशोकग्रामिक- असम में पैदा होने वाला, मान्सवर्णक और पद्मगन्धि वाला होता है।

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol. 2, Issue 1 & 2, (Joint Issue)
15 Jan-15 July, 2011

प्राचीन भारत में गन्ध-व्यवसाय

प्रभात कमल सिंह
शोध छात्र, उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

www.shodh.net

जोंगक- रक्तपोतवर्णक और उत्पल गन्धि या गोमूत्र गन्धि वाला होता है। यह भी असम में पैदा होता है।
ग्रामेरूक - स्निग्धा और गोमूत्र गन्धि का होता है।
सुवर्णकुण्डि - रक्तपोत मातुलुंगगधि (संतरे की गंध सा), असम के सुवर्णकुण्डि नामक स्थान में पैदा होता है।
पूर्णकद्विपक - पद्मगन्धि या नवनीत गन्धि वाला पूर्णकद्वीप में होता है।

भद्रश्रीय-नामक चन्दन दो प्रकार का होता है- ''पारलौहित्य'' नामक चन्दन असम में पैदा होता है और उसका रंग चमेंली पुष्प जैसा होता है। ''आन्तर्वत्य'' चन्दन भी असम में ही पैदा होता है। उसका रंग खस की भांति होता है। इन दोनो की गंध जायफल अथवा कूट औषधि की तरह होती है।

कालेयक - स्वर्ण भूमि में पैदा होता है और वह स्निग्ध एवं पीले रंग का होता है। हिमालय पर उत्पन्न होने वाला कालेयक रक्तपीत रंग का होता है।

औत्तरपर्वतक-रक्तपीत वर्ण का होता है जो उत्तरी पर्वतों पर प्राप्त होता है। तैलपर्णिक, भदुश्रीय और कालेयक, इन तीनों में पीसने पर, पकाने पर, आग में जलाने पर, किसी प्रकार का विकार पैदा न होना, दूसरी वस्तु के साथ मिलाने पर, तथा देर तक रखने पर उनकी गंधा में किसी प्रकार का अन्तर न आना, इसके प्रमुख गुण हैं। उपर्युक्त चन्दनों में जो गुण उल्लिखित हैं (वे इन तीनों में भी पाये जाते हैं।[17]

''दुर्गनिवेश के संयोजन में कौटिल्य ने विविध व्यवसायिक श्रेणियों के आवास की जो व्यवस्था की है उसके अन्तर्गत गन्धिक व्यवसायियों के वासस स्थान का भी विवरण दिया है। नगर - निर्माण नियोजन में कौटिल्य ने अन्त:पुर के पूरब दिशा में इत्र, तेल, पुष्प, हार आदि व्यवसायियों की दुकानों की स्थापना का निर्देश दिया है।[18] शरीर में इत्र, फुलेल, गन्ध, माल्य आदि पहने का पर्याप्त प्रचलन था।[19] अर्थशास्त्र में वर्णित गन्धक, गन्ध पदार्थ, गन्ध पदार्थ के प्रकार, प्राप्ति स्थल, विविध प्रकार के गन्ध उत्पादों के वर्ण और विविध गन्धि आदि से तथा गन्धिक व्यवसायियों के आवास - निवास की व्यवस्था एवं नागर जीवन में सुगन्धित पदार्थों का विविध प्रकार के उपयोग से यह स्पष्टत: प्रमाणित होता है कि मौर्य युग में गन्धिक - व्यवसाय के एक उत्तम नागर व्यवसाय था, जो समाज के उच्च स्तरीय लोगों में बहुत प्रिय था।

शुंगयुगीन राजपुरोहित पतंजलि ने पाणिनिकाल से प्रचलित परम्परा के सन्दर्भों में गन्धिक-व्यवसायियों के वंशानुगत गन्ध- कर्म का उल्लेख किया है। नागर जीवन में सुगन्ध प्रियता प्रचलित थी। स्नान से पूर्व सुगन्धित तेल की मालिश, सुगन्धित उबटन और तत्पश्चात् चन्दनादि सुगन्ध द्रव्यों का लेपन एवं मस्तक में सुगन्धित पत्र रचना की प्रथा थी। धनिक परिवारों में एतदर्थ, उत्सादक, उद्वर्तक, परिव्रिचक, अनुलेपक, प्रलेपक, विलेपक आदि परिचारक नियुक्त थे।[20] अनुलेपन आदि में प्रयुक्त होने वाले सुगन्धि द्रव्यों का भी उल्लेख गणपाठ में किया गया है। यथा - किसरादिगण में - किसर, नलद, तगर, गुग्गुलू तथा उशीर का परिगणन हुआ है।[21] ''शलातु'' एक अन्य सुगन्धित द्रव्य था जिसका विक्रेता ''शलालुकी'' कहा जाता था।[22] सुगन्धित द्रव्यों में चन्दन का भी प्रयोग अधिक था। भाष्यकार ने लिखा है कि घी की गन्ध तेज होती है किन्तु चन्दन की मृदु होती है।[23] तत्कालीन नागरक और प्राकृत[24] जीवन के लोगों में, विशेषत: नागरक जनों में सौन्दर्यवर्धक वस्तुओं के प्रति ललक थी, जिसके सौन्दर्य सजन में सौगन्धिक सहायक थे। स्रग्वी जन सुगन्धित पुष्पों से विनिर्मित अनुलेपन के पश्चात् पुष्पाहारालंकृत होकर हाटों में घूमते थे।

तत्कालीन गंधिक सूवर्चला,[25] उत्पल,[26] मज्जिका,[27] चम्पक,[28] शतपुष्पा, प्राक्पुष्पा, काण्डपुष्पा, प्रान्तपुष्पा, एकपुष्पा,[29] कर्वोर,[30] सूमंगल चन्दन, गुग्गुल आदि अनेक पुष्पों और सुगंधित वृक्षों से सुंगधि द्रव्य बनाये जाते थे। इन सुंगधित वस्तुओं का विक्रेता आपणिक भी ''सुगंध'' कहा जाता था।

शुंगयुगीन गंधिक के व्यवसाय से संबद्ध सामग्रियों के विवेचन से यह ज्ञात होता है कि सुंगधि व्यवसाय की प्रचुरता और व्यापकता इतनी अधिक थी कि नगर, हाटों में ही नहीं अपितु इसका निर्यात विदेशों में भी होता था।[33]

शुंग - सातवाहन एवं कुषाणकाल में विभिन्न उद्यमियों, व्यवसायियों एवं शिल्पियों के संगठन अपने

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol. 2, Issue 1 & 2, (Joint Issue)
15 Jan-15 July, 2011

प्राचीन भारत में गन्ध-व्यवसाय

प्रभात कमल सिंह
शोध छात्र, उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

www.shodh.net

व्यवसायों के प्रर्वधन मे व्यवस्थित थे। महावस्तु[34] में वर्णित विविध श्रेणियों में गन्धिाक तथा गन्धतैलिक नामक दो पृथक् श्रेणियों का उल्लेख किया गया है। इससे यह तथ्य धयातव्य है कि इस काल में गन्ध-व्यवसाय अपने अनेक रूपों में विकसित हो चुका था, यही कारण है कि इस काल के सुगंध निर्मित पदार्थ विदेशों में विक्रयार्थ पर्याप्त मात्र में जाते थे। प्लिनी ने लिखा है कि प्रथम शताब्दी ई0 में भारत से पर्याप्त मात्र में अगरू का निर्यात किया जाता था।[35] प्लिनी ने अगरू के वैशिष्ट्य में लिखा है कि यह चमकदार रक्तिम वर्ण, कठोर और काले रंग के होते थे।[36] रोम में अम्बर नामक सुगंधि की बड़ी मांग थी जो बाहर से जाता था।[37] केसर का भी भारत से विदेशों में निर्यात किया जाता था, जो वेरीगाजा (भृगुकच्छ) से मुज को जाता था।[38] मोच्च को बाजारें अरब के जहाजी स्वामियों से केसर के लिए भरी रहती थीं।[39] कस्तूरी नामक सुगंधित द्रव्य के विदेशों में निर्यात का उल्लेख काश्मश ने किया है।[40] इन वस्तुओं का व्यापार भारत और रोम के मधय आगस्टस के काल से व्यापारिक सम्बन्ध दृढ़ हो गये थे। लगभग 200 ई0 तक चलते रहे।[41]

संस्कृत बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि गाधिक[42] लोग सुगंधित द्रव्यों, इत्र, तेल आदि का व्यापार करते थे, क्योंकि तत्कालीन नारियां केश श्रृंगार में कुमकुम[43] का पर्याप्त प्रयोग करतीं थी। केशों को ''स्नानचूर्ण''[44] तथा ''गन्धोदक''[45] से धावलित कर स्वच्छ करती थीं।[46] केशों में सुगन्धित तेलों[47] का भी प्रयोग किया जाता था। सौन्दरानन्द में सुन्दरी के केश प्रसाधान तथा अंगराग का सुन्दर चित्रण किया गया है। सुन्दरी अपने पति नन्द के हाथ में दर्पण देकर कहती है कि जब तक मैं अपना अंगराग न कर लूँ तब तक तुम इस दर्पण को मेरे सामने धारण करो।[48]

उपर्युक्त सुन्दरी और नन्द की कथा की पुष्टि तत्कालीन पुरातात्विक सामग्री से भी होती है। लखनऊ के प्रादेशिक संग्रहालय[49] तथा मथुरा संग्रहालय[50] में दो चौखटें हैं, जिनमें अनेक कटे हुए शिलापट्ट हैं। प्रथम चौखटे में स्नान करने तथा बालों को साफ करने का दृश्य अंकित है। दूसरे चौखटे के दृश्य में पति और पत्नी का चित्रेतकीर्णन है। पति, पत्नी के बालों को चोटी रूप में गूंथ रहा है। अन्य दृश्य में स्त्री, अपने पति के हाथ में दर्पण दे रही है, क्योंकि वह केश विन्यास तथा अंगराग करना चाहती है।

उपर्युक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में साहित्यिक साक्ष्यों से यह ज्ञात होता है कि शारीरिक श्रृंगार स्त्री तथा पुरूष दोनों ही करते थे। दोनों ही शरीर को निर्मल और सुवासित रखने के लिए ''अनुलेपन''[51] तथा ''विलेपन''[52] का प्रयोग करते थे। उबटन लगाने के पश्चात स्नान किया जाता था। तत्पश्चात अंगराग[53] भी शारीरिक सौन्दर्य एवं सुगन्धि के लिए प्रयोग किया जाता था।[54] सुगन्धित पदार्थों (दिव्यगंध)[55] को भी श्रृंगार के लिए प्रयोग किया जाता था। संस्कृत बौद्ध ग्रन्थों में अनेक सुगन्धित चूर्णों का उल्लेख प्राप्य है। यथा-तमाल पत्र, अगरू, कालानुसार, उरगसार,[56] तथा धूपचूर्ण[57] अनेक प्रकार के चन्दनों-लोहित चन्दन , पीत चन्दन,[58] सिंह चन्दन, गिरि चन्दन[59] तथा पुण्डरीक चूर्णि, तमर चूर्ण और तमालपत्रचूर्ण[60] प्रमुख थे। ये चूर्ण सुगन्धित (सुगन्ध चूर्णानि)[61] होते थे। चन्दन चूर्ण लगाने से शरीर चन्दन के समान सुगन्धित हो जाता था।[62] नारियां लाल चन्दन (लोहित चन्दन)[63] तथा महावर (रक्त)[64] से अपने पैर रंगती थी। शुंग - सातवाहन एवं कुषाणकाल में गन्धिक व्यवसाय का जितना विकास हुआ उतना इसके पूर्ववर्ती काल में नहीं हो पाया क्योंकि विवेच्य काल में भारतीय विदेशी व्यापार पर्याप्त विकसित रहा। विदेशों में भारतीय सुगन्धित पदार्थों के निर्यात से एवं प्रसाधनिक वस्तुओं के मांग से, विदेशी स्वर्ण मुद्राएं भारत में आने लगी, जिसके परिणामस्वरूप कुषाणकाल स्वर्ण मुद्रा प्रवर्तन के लिए भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध हुआ।

भारतीय इतिहास का स्वर्णिम युग विविध पुष्प रागों से मण्डित, वैभव - विलास के सुगन्धी से आकण्ठ

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol. 2, Issue 1 & 2, (Joint Issue)
15 Jan-15 July, 2011

प्राचीन भारत में गन्ध-व्यवसाय

प्रभात कमल सिंह
शोध छात्र, उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

www.shodh.net

आप्लावित था। भारतीय ऋतुएं विविधि पुष्प राशि से गुप्त कालीन नागरिकों और नागरिकाओं के प्रसाधन-साधान के रूप में सदा गन्धिकों द्वारा उपयोग में लायी जाती थीं। नर और नारी दोनों शरीर को दर्शनीय और कमनीय बनाने के लिए विविध प्रकार के पुष्पसंभार, सुगन्धिद्रव्य, अंगराज, अन्जन, चन्दनचूर्ण आदि के आलेपन, विलेपन और अनुलेपन का प्रयोग करते थे, जिनका विस्तृत उल्लेख कालिदास के ग्रन्थों, अमरकोश, बृहत्संहिता और जैनागम साहित्य में हुआ है।

(१) सुगन्धि द्रव्य -

अमरकोश में कुमकुम, अग्निशिखं, वरं, वाह्लिकं, पीतनं, रक्तं, संकोचं, पिशुनं, धीरं (वीरं) तथा लोहितचंदनं आदि केसर के प्रकार (पर्याय), लवंग, देवकुसुम, श्रीसंज्ञम, जायक, कलीयक, कालानुसार्य, वंशिक, अगरू, राजार्ह, लोहं, मिज, जोगक, कालागुरू, मंगल्या, यक्षधूप, सर्जरस, राल, सर्वरस, बहुरूप, नाम के धूप, वृकधूप, कृत्रिमधूप आदि अनेक सुगंधित पदार्थों को मिलाकर बनाये हुए धूप, तुरूष्क, पिण्डक, सिल्ह, यावन, प्रकार के लोहबान, पायस, श्रीवास, श्रीवेष्ठ, सरलद्रव्य, आदि देवदारू के गोंद से बने हुए सुगन्धित द्रव्य, मृगनाभि, मृगमद, कस्तूरी आदि कस्तूरियॉं, कपूर, घनसार, चन्द्रसंज्ञ, सिताभ्र, हेमवालुका, प्रकार के कपूर, गनधसार, मलयज, भद्रश्री, चन्दन आदि मलयगिरि के चन्दन, श्वेत, शीतल, तैलपर्णिक चन्दन, पद्मगन्धा, गोशीर्ष चन्दन तथा कपिल या पीतवर्ण के हरि चन्दन, तैलपर्णी पत्रंगम, रंजनम, रक्तचन्दनम, कुचन्दन, प्रकार के लाल चन्दन आदि से अनेकानेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्य बनाये जाते थे।[65]

(२) लेप-

कपूर, अगर, कस्तूरी और कंकोर इन चारों को बराबर-बराबर लेकर विशेष लेप यक्ष कर्दम बनता था।[66] गात्रनुलेपनी, वर्त्ति, वर्णक, एवं विलेपन शरीर पर लेप करने के लिए पिसे या घिसे हुए गन्ध-द्रव्य विशेष थे। चूर्ण, वासयोग, वस्त्रदि को सुवासित करने योग्य, चूर्ण किये हुए विशेष गन्ध द्रव्य थे। इत्र आदि से सुगन्धित किये हुए वस्त्र आदि को भावित और केतकी, केवड़ा, या गुलाब आदि से सुगंधित किये हुए वस्त्र आदि को ''वासित'' कहते थे।[67] गुलाब जल या सुगन्धित पुष्पों से पान, तिल आदि को सुवासित करने के लिए ''अधिवासन'' शब्द प्रचलित था।[68] कुमकुम आदि सुगन्धित द्रव्यों से शरीर संस्कार के परिक्रम और अंगसंस्कार (शरीर मार्जित कर सुगन्धी द्रव्य से स्वच्छ करने के लिए मार्ष्टि, मार्जन तथा मृजा, उबटन, बेसन तथा सुगन्धित साबुन आदि से शरीर मलने के लिए उदवर्तन तथा उत्सादनं, शरीर में चन्दन लगाने के लिए चर्चा, चारचिक्य, स्थासक तथा कस्तूरी, केसर, मेंहदी या चन्दनादि से कपोल या स्तनादि पर पत्र पुष्पादि को सुगन्धित चित्रकारी के लिए पत्र-लेखा तथा पत्रं-गुलि: आदि शब्दों का प्रयोग अमरकोश में किया गया है।[69]

गुप्तकाल के समसामयिक जैनागम साहित्य में कुमकुम, कपूर, लौंग, लाख, चन्दन, कालागुरू, कुन्दरूक्क, तुरूक्क आदि पुष्पों[70] से सुगन्धित द्रव्य तैयार किये जाते थे। अलसी, कुसम्भा और सरसों को घांड़ी में पेरकर तेल निकाला जाता था। और उसमें सुगन्धित द्रव्य ड़ालकर सुगन्धित तेल तैयार किया जाता था।[71] अनेक प्रकार का सुगन्धित जल प्रयोग में लाया जाता था।[72] दर्दर को मलयाचल से आने वाले सुगन्धिक द्रव्यों का उल्लेख किया गया है।[73] गोशीर्ष चन्दन, हिमवन्त पर्वत से लाया जाता था।[74] हरिचन्दन भी उल्लिखित है।[75]

सुगन्धित द्रव्यों में कूट,[76] तगर, इलायची, चम्पा, कुमकुम, दमड़ चन्दन, तुरूष्क, मरूआ, जाति, जूही, मल्लिका, स्नान मल्लिका, केतकी, पाटलि, णेमालिय, अगरू, वास, कर्पूर, आदि का उल्लेख किया गया है।[77] चैत्यों, वासभवनों और नगरों में धूप जलाया जाता था। धूपदान को ''धूपकडच्छु'' अथवा ''धूपघटि'' नाम से जाना जाता था।[78] सुगन्धित द्रव्य बाजारों में बेचे जाते थे। इन द्रव्यों के विक्रेताओं को गन्धी और उनकी दुकानों को गन्धशाला कहा जाता था।[79]

स्त्रियां लोध्र-चूर्ण, लोध्रपुष्प, गुटिका, कुष्ठ, तगर, तथा खस के साथ कूटकर मिलाया हुआ अगरू का

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol. 2, Issue 1 & 2, (Joint Issue)
15 Jan-15 July, 2011

प्राचीन भारत में गन्ध-व्यवसाय

प्रभात कमल सिंह
शोध छात्र, उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

www.shodh.net

प्रयोग करती थीं। मुंह पर लगाने के लिए तेल और ओठ रचाने का चूर्ण (नन्दिचुण्ण) प्रमुख था। पैरों को मलवाते समय उनपर तेल का मालिश कराते, लोध्र, कल्कचूर्ण और वर्णका, उपलेप कराते, फिर उष्ण या शीतल जल से उन्हें धो ड़ालते, तत्पश्चात् चन्दन आदि का लेप करते और उन्हें धूप देते।[80]

जैनागम साहित्य में वर्णित गंधिक, गन्धशाला, गन्धद्रव्य, गन्धलेपन से ज्ञात होता है कि विवेच्यकाल में गन्धिक का व्यवसाय कितना विकसित और कितना आकर्षण एवं उच्च समाज में कितना लोकप्रिय था, यह प्रमाणित होता है। सुगंधित द्रव्यों का तत्कालीन समाज में पुष्कल प्रयोग एवं विदेशों में इसका निर्यात गंधिक व्यवसाय के उत्तम विकसित दशा को सिद्ध करता है।

गुप्तकालीन कवि कालिदास के ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि पुरूष तथा स्त्रियां दोनों विविध अंगरागों का प्रयोग करती थीं। स्नान के पूर्व चन्दन कोच,[81] या उशीर[82] नामक घास से निर्मित अनुलेपन,[83] तथा अंगराग,[84] का लेप शरीर में लगाती थीं। प्रियंगु, कालेयक और केसर आदि सुगन्धित द्रव्यों के मिंश्रण से कोच बनता था जो फिर मृगनाभि या कस्तूरी से सुवासित किया जाता था।[85] अन्य प्रकार के लेप कालेयक[86] (एक तिलहन का पौधा), कालागुरू[87] और हरिचन्दन[88] से बनते थे। इंगुदी के फलों से सुगन्धित तेल निकाला जाता था।[89] स्त्री और पुरूष अपने ललाट पर हरिताल[90] और मन:शिला[91] के मिश्रण से बने लेप से तिलक लगाते थे। चन्दन[92] और कुमकुम[93] तिलक के लिए प्रयुक्त होने के अतिरिक्त स्त्रियों द्वारा शीतलता लाने के लिए स्तनों पर भी लगाये जाते थे।[94] स्त्रियां अपने अधारोष्ठ, आलकतक,[95] से रजित करती और फिर उन पर लोध्ररेणु नामक एक चूर्ण मलती थीं जो लोध्रकाष्ठ से बनता था, जिससे वे पीतारूष हो जाते।

सुगन्धी व्यवसाय के उपर्युक्त उल्लेखों से गुप्तकालीन सुगंधित जीवन का परिचय प्राप्त होता है जहां नर नारी अपने शरीर प्रसाधन के लिए विविध प्रकार के गंध द्रव्यों का प्रयोग विभिन्न प्रकार से करते थे। गुप्त युग में सुगन्धित द्रव्यों के प्रयोगार्थ नवीन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। अनेक सुगन्धित द्रव्यों के मिश्रण की प्रक्रिया के वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि इस युग का सुगन्ध-व्यवसाय अपने प्रविधि, प्रक्रिया, प्रयोगविध, सुगन्धि द्रव्य के निर्माण एवं निर्यात में उच्च शिखर पर पहुंचा हुआ था।

सन्दर्भः-

1.अष्टाध्यायी, 4/1/64 ।, 2. तत्रैव, 4/2/80, 87। 3. तत्रैव, 5/2/135।, 4. तदैव।, 5. तत्रैव, 4/3/43 ''कालातपुष्यत्''।, 6. तत्रैव, 4/5/53।, 7. तत्रैव, 4/4/54।, 8. अष्टाध्यायी, 4/4/53-54 ।, 9. तत्रैव, 4/4/48 ।, 10. डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल, पाणिनिकालान भारतवर्ष, पृ0 115 ।, 11. महाभारत, 8/12/16 ।, 12. अष्टाधयायी, 11/52/33 ।, 13. तत्रैव, 11/30/27 ।, 14. तत्रैव, 11/52/10 ।, 15. अष्टाध्यायी, 8/27/9 ।, 16. तदैव ''गुरू 1 स्निग्धंपेशलगन्धि निहांरि अग्निसहमसंप्लुतधूमं समगन्धं विमर्दसहम् इत्यगुरूगुणा:।, 17.अर्थशास्त्र, 2/11 ।, 18. तत्रैव, 2/4 ''तत: पर गन्धमाल्यधान्यरसपण्या: प्रधानकारव: क्षत्रियसयाश्च पूर्वा दिशमधिवसेयु:।'', 19. तत्रैव, 4/6 ।, 20. महाभाष्य, याजकादिगण, 2/2/9, तथा महिष्यादिगण, 4/4/48।, 21. महाभाष्य, 4/4/53 ।, 22. तत्रैव, 4/4/54 ।, 23. तत्रैव,2/2/8 ''तथाघृतस्थतीव्र: चन्दनस्यमृदु:''।, 24. तत्रैव, 4/2/129 ।, 25. महाभाष्य, 3/1/7 ''सुवर्चला आदित्यंअनुपरेति''।, 26.तत्रैव, 1/1/72, 1/1/50 ।, 27. तत्रैव, 2/1/1, 4/3/166 ।, 28. तत्रैव, 2/1/1 ।, 29. तत्रैव, 4/1/64 ।, 30. तत्रैव, 4/3/166 ।, 31.तत्रैव, 2/2/8 ।, 32. तत्रैव, 4/1/71 ।, 33. तत्रैव, 5/4/135 ।, 34. महावस्तु, 3/144/4, 3/113/6-19, 3/392/6-7 ।, 35.प्लिनी, नेचुरल हिस्ट्री, भाग 5, बुक 27, चेप्टर 5, पृ0 222।, 36. तत्रैव, बुक 25, चैप्टर 102, पेज 143-44 ।, 37. तत्रैव, बुक 27, चैप्टर 5, पेज 223 ।, 38. पेरिप्लस, 24, पृ0 30 ।, 39. तत्रैव, 21, पृ0 30 ।, 40. काश्मश, क्रिश्चियन टोपोग्राफी, 8 (मैक्रिण्डल, एशिएंट इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन क्लासिकल लिटरेचर, पृ0 163 ।, जर्नल ऑफ दि रायल एसियाटिक सोसाइटी, 1912, पृ0 1000 ।, 41. दिव्यावदान, 316/15, 217/25, 222/1 ।, 42. अवदान, जिल्द 1/282-2, 292/7, 296/11, 304/10 ।, 43. महावस्तु, जिल्द 2/489/9 ।, 44. ललितविस्तर, 71/6 (वैद्य)।, 45. महावस्तु, जिल्द 2/489/7-8 ।, 46. सद्धर्मपुण्डरीक सूत्र, 240/9 (दिव्यावदान 176/28 (ललितविस्तर, 79/18 ।, 47. सौन्दरानन्द, 4/13 ।, 48. स्टेट म्यूजियम, लखनऊ, लेबिल नं0 1392, बालकनी के ऊपर ।, 49. वोगेल, कैटलाग ऑफ मथुरा म्यूजियम, नं0 ई-27, पृ0 110।, 50. ललितविस्तर, 16/7, 114/17(दिव्यावदान, 5/31, 6/32 ।, 51.

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

Bilingual journal of Humanities & Social Sciences

Half Yearly

Vol. 2, Issue 1 & 2, (Joint Issue)
15 Jan-15 July, 2011

प्राचीन भारत में गन्ध-व्यवसाय

प्रभात कमल सिंह
शोध छात्र, उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

www.shodh.net

अवदान, जिल्द 1/9/4(सुखावतिव्यूह, 16/7, 17/16(ललितविस्तर, 355/11(करूणाकुण्डरीक, 49/16 ।, 52. सौन्दरानन्द, 4/9 ।, 52. सौन्दरानन्द, 4/14 ।, 53. ललितविस्तर, 96/5 (लेफमैन)(सुखावतीव्यूह, 16/7, अवदान, जिल्द 1/9/4 ।, 54. सुखावतीव्यूह, 38/17(करूणापुण्डरीक, 40/27-28 ।, 55.तत्रैव, 16/7 ।, 56. महावस्तु, जिल्द 2/309/18-19 ।, 57. तत्रैव, जिल्द 2/310/1-4 ।, 58. दिव्यावदान, 98/2-3/115/12 ।, 59. सद्धर्मपुण्डरीक, 218/5 ।, 60. अवदान, जिल्द 1/350/10 ।, 61. तत्रैव, 1/354/3-4 ।, 62. सौन्दरानन्द, 10/15 ।, 63. अमरकोश, 2/6/123-132 ।, 64. अमरकोश, 2/6/133 ''कर्पूरागुरूकस्तूरोकवकोलैर्यक्षकर्दमः''।, 65. तत्रैव, 2/6/134, ''श्रीस्वामीटीका''।, 66. तदैव।, 67. तत्रैव, 2/6/121-122 ।, 68. ज्ञातृधर्मकथा, 1, पृ0 3, 10 ।, 69. आवश्यकचूर्णि, पृ0 319(पिण्डनिर्युक्ति, 40 ।, 70. औपपातिक सूत्र, 31, पृ0 121 आदि।, 71. ज्ञातुधर्मकथा, 1, पृ0 30 तथा रामायण, 2/91/24।, 72. उत्तराध्ययन टीका, 18, पृ0 252-अ तथा अर्थशास्त्र ,2/11 ।, 73. आचारांग चूर्णि, पृ0 169 ।, 74. कुष्ट का उल्लेख अथर्ववेद में हुआ है, जो उत्तर के बर्फीले पर्वतों पर होता था और वहां से पूर्वी प्रदेशों में लाया जाता था। (डॉ0 जगदीश चन्द्र, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ0 153, पाद0 8)।, 75. राजप्रश्नीयसूत्र, 39, पृ0 91(बृहत्कल्पभाष्य, 1/3074 ।, 76. ज्ञातृधर्मकथा, 8, पृ0 96 (राजप्रश्नीयसूत्र, 100 तथा गिरिराजप्रसन्न मजूमदार का ''इण्डियनकल्चर'' 1 1-4, पृ0 658 में प्रसाधन सम्बन्धी लेख।, 77. व्यवहारभाष्य, 9/23।, 78. आचारांग, 2/13/395, पृ0 383 (बृहत्कल्पभाष्य, 5/6035 ।, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, पृ0 84 ।, 79. ऋतुसंहार, 2/21 ।, 80. तत्रैव, 5/5 ।, 81. कुमारसंभव, 5/68 (रघुवंश 6/60 आदि ।, 82. डॉ0 भगवतशरण उपाध्याय, कालिदास का भारत, भाग 1, पृ0 289, पाद0 4 ।, 83. ऋतुसंहार, 4/5(कुमारसंभव, 7/9 ।, 84. ऋतुसंहार, 2/21, 4/5, 5/5(कुमारसंभव, 7/15(रघुवंश 14/12 ।, 85. रघुवंश, 6/60 ।, 86. अभिज्ञानशाकुन्तल, पृ0 73 ।, 87. कुमारसंभव, 7/23 ।, 88. तदैव।, 89. ऋतुसंहार, 1/2 ।, 90. तत्रैव, 4/2 ।, 91. तत्रैव, 1/4,6 ।, 92. मालविकाग्निमित्र, 3/5 (कुमारसंभव, 5/35 ।

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN